# ज्ञानकी स्व-पर प्रकाशकता

दार्शनिक क्षेत्रमें ज्ञान स्वप्रकाश है, पर प्रकाश है या स्व-परप्रकाश है, इन प्रश्नोंकी बहुत लम्बी और विविध कल्पनापूर्ण चर्चा है। इस विषयमें किसका क्या पक्ष है इसका वर्णन करनेके पहिले कुछ सामान्य बातें जान लेनी जरूरी हैं जिससे स्वप्रकाशत्व-परप्रकाशत्वका भाव ठीक-ठीक समझा जा सके।

१—ज्ञानका स्वभाव प्रत्यक्ष योग्य है। ऐसा सिद्धान्त कुछ लोग मानते हैं जबकी दूसरे कोई इससे बिलकुल विपरीत मानते हैं। वे कहते हैं कि ज्ञानका स्वभाव परोक्ष ही है प्रत्यक्ष नहीं। इस प्रकार प्रत्यक्ष परोक्षरूपसे ज्ञानके स्वभाव-भेदकी कल्पना ही स्वप्रकाशत्वकी चर्चाका मूलाधार है।

२—स्वप्रकाश शब्दका अर्थ है स्वप्रत्यक्ष अर्थात् अपने आप ही ज्ञानका प्रत्यक्षरूपसे भासित होना। परन्तु परप्रकाश शब्दके दो अर्थ हैं जिनमेंसे पहिला तो परप्रत्यक्ष अर्थात् एक ज्ञानका अन्य ज्ञानव्यक्तिमें प्रत्यक्षरूपसे भासित होना, दूसरा अर्थ है परानुमेय अर्थात् एक ज्ञानका अन्य ज्ञानमें अनुमेयरूपतया भासित होना।

३—स्वप्रत्यक्षका यह अर्थ नहीं कि कोई ज्ञान स्वप्रत्यक्ष है अतएव उसका अनुमान आदि द्वारा बोध होता ही नहीं पर उसका अर्थ इतना ही है कि जब कोई ज्ञान व्यक्ति पैदा हुई तब वह स्वाधार प्रमाताको प्रत्यक्ष होती ही है अन्य प्रमाताओंके लिए उसकी परोक्षता ही है तथा स्वाधार प्रमाताके लिए भी वह ज्ञान व्यक्ति यदि वर्तमान नहीं तो परोक्ष ही है[1]। परप्रकाशके परप्रत्यक्ष अर्थके पक्षमें भी यही बात लागू है—अर्थात् वर्तमान ज्ञान व्यक्ति ही स्वाधार प्रमाताके लिये प्रत्यक्ष है, अन्यथा नहीं।

---

१. 'यत्त्वनुभूतेः स्वयंप्रकाशत्वमुक्तं तद्विषयप्रकाशनवेलायां ज्ञातुरात्मनस्तथैव न तु सर्वेषां सर्वदा तथैवेति नियमोऽस्ति, परानुभवस्य हानोपादानादिलिङ्गकानुमानज्ञानविषयत्वात् स्वानुभवस्याप्यतीतस्याशासिषमिति ज्ञानविषयत्वदर्शनाच्च।'

—श्रीभाष्य पृ० २४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञानवादी बौद्ध ( न्यायबि० १. १० ) मीमांसक, प्रभाकर[1] वेदान्त[2] और जैन ये स्वप्रकाशवादी हैं। ये सब ज्ञानके स्वरूपके विषयमें एक मत नहीं क्योंकि विज्ञानवादके अनुसार ज्ञानभिन्न अर्थका अस्तित्व ही नहीं[3] और ज्ञान भी साकार। प्रभाकरके मतानुसार बाह्यार्थका अस्तित्व है ( बृहती पृष्ठ ७४) जिसका संवेदन होता है। वेदान्तके अनुसार ज्ञान मुख्यतया ब्रह्मरूप होनेसे नित्य ही है। जैन मत प्रभाकर मतकी तरह बाह्यार्थका अस्तित्व और ज्ञानको जन्य स्वीकार करता है। फिर भी वे सभी इस बारेमें एकमत हैं कि ज्ञानमात्र स्वप्रत्यक्ष है अर्थात् ज्ञान प्रत्यक्ष हो या अनुमिति, शब्द, स्मृति आदि रूप हो फिर भी वह स्वस्वरूपके विषयमें साक्षात्काररूप ही है, उसका अनुमितित्व, शाब्दत्व, स्मृतित्व आदि अन्य ग्राह्यकी अपेक्षासे समझना चाहिए अर्थात् भिन्न भिन्न सामग्रीसे[4] प्रत्यक्ष, अनुमेय, स्मर्तव्य आदि विभिन्न विषयोंमें उत्पन्न होनेवाले प्रत्यक्ष, अनुमिति, स्मृति आदि ज्ञान भी स्वस्वरूपके विषयमें प्रत्यक्ष ही हैं।

ज्ञानको परप्रत्यक्ष अर्थमें परप्रकाश माननेवाले सांख्य-योग[5] और न्याय वैशेषिक हैं[6]। वे कहते हैं कि ज्ञानका स्वभाव प्रत्यक्ष होनेका है पर वह अपने आप प्रत्यक्ष हो नहीं सकता। उसकी प्रत्यक्षता अन्याश्रित है। अतएव ज्ञान चाहे प्रत्यक्ष हो, अनुमिति हो, या शब्द स्मृति आदि अन्य कोई, फिर भी वे सब स्वविषयक अनुव्यवसायके द्वारा प्रत्यक्षरूपसे गृहीत होते ही हैं। पर प्रत्यक्षत्वके विषयमें इनका ऐकमत्य होनेपर भी परशब्दके अर्थके विषयमें ऐकमत्य

---

१. 'सर्वविज्ञानहेतूत्था मितौ मातरि च प्रमा। साक्षात्कर्तृत्वसामान्यात् प्रत्यक्षत्वेन सम्मता॥'—प्रकरणप० पृ० ५६।

२. भामती पृ० १६। "सेयं स्वयं प्रकाशानुभूतिः"—श्रीभाष्य पृ० १८। चित्सुखी पृ० ६।

३. 'सहोपलम्भनियमादभेदोनीलतद्धियोः'-बृहती पृ० २६। 'प्रकाशमानस्तादात्म्यात् स्वरूपस्य प्रकाशकः। यथा प्रकाशोऽभिमतः तथा धीरात्मवेदिनी।'—प्रमाणवा० ३. ३२६।

४. सर्वविज्ञान हेतूत्था....यावती काचिद्ग्रहणस्मरणरूपा।"—प्रकरणप० पृ० ५६।

५. "सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्। न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात्"—योगसू० ४. १८, १६।

६. "मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो मतिः कृतिः"—कारिकावली ५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं क्योंकि न्याय-वैशेषिकके अनुसार तो परका अर्थ है अनुव्यवसाय जिसके द्वारा पूर्ववर्ती कोई भी ज्ञानव्यक्ति प्रत्यक्षतया गृहीत होती है परन्तु सांख्य-योगके अनुसार पर शब्दका अर्थ है चैतन्य जो पुरुषका सहज स्वरूप है और जिसके द्वारा ज्ञानात्मक सभी बुद्धिवृत्तियाँ प्रत्यक्षतया भासित होती हैं।

परानुमेय अर्थमें परप्रकाशवादी केवल कुमारिल हैं जो ज्ञानको स्वभावसे ही परोक्ष मानकर उसका तज्जन्यज्ञाततारूप लिङ्गके द्वारा अनुमान मानते हैं जो अनुमान कार्यहेतुक कारणविषयक है—शास्त्रदी०पृ० १५७। कुमारिलके सिवाय और कोई ज्ञानको अत्यन्त परोक्ष नहीं मानता। प्रभाकरके मतानुसार जो फलसंवित्तिसे ज्ञानका अनुमान माना जाता है वह कुमारिल-सम्मत प्राकट्यरूप फलसे होनेवाले ज्ञानानुमानसे बिलकुल जुदा है। कुमारिल तो प्राकट्यसे ज्ञान, जो आत्मसमवेत गुण है उसका अनुमान मानते हैं जब कि प्रभाकरमतानुसार संविद्रूप फलसे अनुमित होनेवाला ज्ञान वस्तुतः गुण नहीं किन्तु ज्ञानगुणजनक सन्निकर्ष आदि जड सामग्री ही है[1]। इस सामग्री रूप अर्थमें ज्ञान शब्दके प्रयोगका समर्थन करणार्थक 'अन्' प्रत्यय मान कर किया जाता है।

आचार्य हेमचन्द्रने जैन परम्परासम्मत ज्ञानमात्रके प्रत्यक्षत्व स्वभावका सिद्धान्त मानकर ही उसका स्वनिर्णयत्व स्थापित किया है और उपर्युक्त द्विविध परप्रकाशत्वका प्रतिवाद किया है। इनके स्वपक्षस्थापन और परपक्ष-निरासकी दलीलें तथा प्रत्यक्ष-अनुमान प्रमाणका उपन्यास यह सब वैसा ही है जैसा शालिकनाथकी प्रकरणपञ्चिका तथा श्रीभाष्य आदिमें है। स्वपक्षके ऊपर औरों के द्वारा उद्भावित दोषोंका परिहार भी आचार्यका वैसा ही है जैसा उक्त ग्रन्थोंमें है।

ई० १९३९ ] [ प्रमाण मीमांसा

---

१ संविदुत्पत्तिकारणमात्ममनःसन्निकर्षाख्यं तदित्यवगम्य परितुष्यतामायुष्मता''—प्रकरणप० पृ० ६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org